रजि. नं. पी.बी./जे.एल.–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–71, अंक : 12, 19/22 जून 2014 तदनुसार 8 आषाढ़ सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

कौन मनुष्य धनी?

–ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये यः आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति।।

–ऋ. 7/1/23

शब्दार्थ– हे **अग्ने**=ज्ञानिन्! **स्वनीक**=उत्तम प्रकाशवान् महात्मन्! **सः**= वह **मर्तः**= मनुष्य **रेवान्**= धनवान है **यः**= जो **अमर्त्ये**= अविनाशी में **हव्यम्**= हव्य, भोग्य पदार्थों को **आ+जुहोति**=पूर्णरूप से दे डालता है। **सः** =वह **वसुवनिम्**= धन के कमनीय **देवता**= दिव्य गुणों को **दधाति**= धारण करता है **यम्**= जिसके पास **पृच्छमानः** पूछता हुआ **सूरिः**= विद्वान् **अर्थी**= अर्थी, याचक होकर **एति**= जाता है।

व्याख्या–इस मंत्र में ऊंचे दर्जे के दो उत्तम व्यवहारिक तत्व बताये गये हैं। पूर्वार्द्ध में धनी का स्वरूप बताया गया है। धन शब्द का भावार्थ है जिससे प्रीति उत्पन्न हो। प्रीति के दर्जे हैं। संसार को सारी प्रीतियां, सारे सुख, समस्त आनन्द दुख से युक्त हैं। इसीलिये तैत्तिरीयोपनिषत् (ब्रह्मानन्दवल्ली 8) में ऋषि ने कहा–

युवा स्यात्साधुयुवाध्यापकः, आशिष्ठो द्रढ़िष्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात, स एक मानुष आनन्दः।।

जवान हो, सच्चरित और युवा विचारों का हो, खूब खाता-पीता हो, दृढ़ शरीर वाला हो, अत्यन्त बलवान हो, धन-धान्य से पूर्ण यह सम्पूर्ण पृथिवी उसकी हो। यह एक मानुष आनन्द है।

मानुष आनन्द की प्रथम कोटि भी किसी को प्राप्त नहीं। जो प्राप्त है, वह निकृष्ट है और यदि यह कोटि किसी भान्ति प्राप्त भी हो जाए तो उसके स्थिर रहने का कोई प्रमाण नहीं, अतः बुद्धिमान इस विनाशवान धन का सदुपयोग भगवान के मार्ग में करते हैं। इसी भाव को लेकर वेद कहता है– **स मर्तो.. रेवान्, अमर्त्ये य आ जुहोति हव्यम्।** वह मरणधर्म्मा (मनुष्य) धनी है, जो अमर्त्ये= अविनाशी भगवान के निमित्त सम्पूर्ण भोग सामग्री दे डालता है।

ब्रह्मानन्द लेने के लिये तो यह सब देना होगा। जैसा कि अथर्ववेद में कहा है–

मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। **–अ. 19/71/1**

जीवनप्राण, धनधान्य, यशकीर्ति, प्रतिष्ठा सभी मुझे दे डालो और तुम ब्रह्मलोक=ब्रह्मानन्द प्राप्त करो। सौदा तो सस्ता है। ये सांसारिक पदार्थ न भी दोगे तब भी ये आपके पास न रहेंगे, आपके पास से चले जाएंगे। कितनी अच्छी बात है कि व्यर्थ जाने वालों को दे डालने से अखुट ब्रह्मानंद मिलता है। कोई मूर्ख व्यापारी ही इस व्यापार से चूकेगा। यम बड़ा अच्छा व्यापारी था। उसने नचिकेता को समझाया था कि भाई! इन पदार्थों को पास रखने में हानि का अनुभव करके–

ततो मया नाचिकेताश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानिस्म नित्यम्

–कठो. 2/10

मैंने नाचिकेत अग्नि जलाई है (और उसमें इन सब विनश्वर पदार्थों का हवन कर डाला है) इससे मैंने अनित्य पदार्थों के द्वारा नित्य तत्व को पाया है। वैसे भी दान देने से धन नहीं घटता। वेद बहुत सुन्दर शब्दों में कहता है–

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यत्युत। **–ऋ. 10/117/1**

और देने वाले का तो धन नष्ट होता ही नहीं। वह तो पारमात्मिक बैंक में जमा होकर सूद के कारण बढ़ता ही है। धन की वृद्धि कौन धनिक नहीं चाहता? भोले! फिर इस रीति को तू क्यों नहीं अपनाता?

उत्तरार्ध में कहा– **स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति।** धन के कमनीय गुणों को वही धारण करता है। जिसके पास पूछताछ करता हुआ विद्वान याचक आता है।

विद्वान– सच्चा विद्वान भूखा मर जाएगा किन्तु मदमाते धनपतियों के पास नहीं जाएगा। वह सरस्वती के केतु को झंडे को लक्ष्मी के द्वार पर नहीं गिराएगा, किन्तु सचमुच उस धनी को बड़ा सौभाग्यवान समझना चाहिये, विद्वान जिसके द्वार पर याचक होकर आए। सचमुच उसमें कोई कमनीय गुण है। संसार का बहुत सा व्यवहार धन के आश्रय चलता है। धनैषणा से ऊपर उठे हुये विरक्त संन्यासी को भी अन्न वस्त्र की आवश्यकता होती है। अन्न वस्त्र स्वयं धन हैं और धन से साध्य है, अतः धन की प्रत्येक मनुष्य को आवश्यकता पड़ती है। वेद धन की निंदा नहीं करता, धनप्राप्ति की निन्दा भी नहीं करता। वेद तो कहता है:

शतहस्त समाहर **–अ.3/24/5**

सैंकड़ों हाथों से कमा

सहस्रहस्त सं किर। **–अ. 3/24/5**

हजारों हाथों से बिखेर दे, दान कर दे।

ऐसे भाग्यवान धनी दो प्रकार के होते हैं– एक जानश्रुति पौत्रायण जैसे जो निःस्वार्थ भाव से अन्नादि के द्वारा साधु संतों, ब्रह्मवादियों की सेवा करते हैं, दूसरे अजातशत्रु और जनक जैसे, जिन्हें दूर दूर से जिज्ञासु, ब्रह्मतत्व के अभीप्सु पूछते हुये आते हैं। धन का यदि कोई स्पृहणीय-कमनीय गुण हैं तो ऐसे धनियों में। शेष तो कोषाध्यक्ष हैं, धनस्वामी= धनी नहीं हैं। **–स्वाध्याय संदोह से साभार**

यज्ञ पवित्रता का प्रेरक है

-ले० डा. रविदत्त शर्मा एम.ए. (वेद) आर्य समाज शामली

'शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः'
-ऋ० १०.१८.२

श्रुति का आदेश है कि याजक शुद्ध-पवित्र रहें। यज्ञ के द्वारा पवित्रता स्थिर रहती है क्योंकि यज्ञ पवित्रता का प्रेरक है। सामान्य रूप से देखने में आता है कि सभी शुद्ध रहना चाहते हैं। पशु-पक्षी भी जल में स्नान करते हैं, इस क्रिया से शायद वे भी पवित्रता का अनुभव करते हैं। प्राचीन शास्त्रों में पवित्रता को मुख्य स्थान दिया गया है। कर्मकाण्ड का पात्र वही है जो सर्वथा पवित्र है। प्रकृति की छटा में पवित्रता निहित है; ऐसा प्रतीत होता है कि पवित्रता ही रमणीयता है। पवित्रता में प्राणियों का जीवन है। वायुमण्डल जितना पवित्र होगा उतना ही सुख का अनुभव होगा। सूक्ष्म से स्थूल तक सब में पवित्रता अपेक्षित है। जन्म होते ही गाय अपने बच्चे को चाटकर स्वच्छ कर देती है। पवित्र वातावरण में ही पवित्र कार्य होते हैं। शास्त्रों में पवित्र कर्म करने की प्रेरणा दी गयी है। मलमूत्र-विसर्जन के पश्चात् कुत्ता अपने पैर से मिट्टी फैंकता है, मानो वह उसे ढकना चाहता है। कुत्ते की इस क्रिया से प्रकृति का सन्देश मिलता है कि मलमूत्र को खूला न छोड़ो। उससे प्रदूषण फैलता है। कहीं कोई पशु मर जाता है तो गिद्ध-श्रृगाल आदि उसको साफ कर देते हैं तथा बची हुई अस्थियों को भी कुत्ते इधर-उधर ले जाते हैं ; यह प्राकृतिक स्वच्छता की व्यवस्था है। मरा हुआ पशु यदि सड़ जाए तो बहुत प्रदूषण फैल जाए जिससे विविध प्रकार की बीमारियाँ हो सकती हैं। प्रदूषण किसी भी तरह का हो, शुद्धता का विरोधी है। आयुर्वेद सम्बन्धी स्वस्थवृत्त में इसी प्रकार की छोटी-छोटी बातें बतायी गयी हैं। भोजन के लिये स्थान पवित्र हो। हाथ-पैर धोकर भोजन किया जाए। शाक-सब्जी को प्रयोग करने से पहले अच्छी तरह धो लिया जाए अन्न को साफ करके प्रयोग किया जाए। पानी को उबाल कर व छान कर पिया जाय। जिस स्थान पर बैठो पहले उसे बुहारी से साफ कर लो। क्षौरकर्म (हजामत) करते समय कैंची आदि को साफ कर लेना चाहिये। हाथों को बिना धोये मुँह पर तथा आँखों पर मत लगाओ. चोट लगने पर उसे खुला न छोड़ो। आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलना चाहिये। वात-पित्त-कफ में से एक भी विकृत या दूषित हो जाय तो शरीर का नाश हो जाता है अतः त्रिदोष को सम एवं सौम्य रखना चाहिये। माता स्नान करके तथा स्वच्छ वस्त्र पहनकर बच्चे को अपना दूध पिलावे। मिथ्या आहार-विहार से भी दोष उत्पन्न होते हैं तो व्याधि का कारण बनते हैं। इस प्रकार की असावधानी से शरीर सदैव दूषित रहता है। ऐसे वैद्य से भी चिकित्सा नहीं करानी चाहिये जो मैला कुचैला रहता हो। सभी शास्त्रकारों ने शुद्धता को श्रेय-प्राप्ति का साधन बताया है।

शुद्धि अनेक प्रकार की होती है। स्थूल विचारधारा वाले लोग प्रायः शारीरिक साज-सज्जा को ही सब कुछ मान लेते हैं। सर्वप्रथम बाह्य एवं आभ्यन्तर भेद से शुद्धि दो प्रकार की होती है। बाह्य शुद्धि के अन्तर्गत शारीरिक मार्जन-स्नानादि के अतिरिक्त वातावरण तथा हमारे सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों और पदार्थों की शुद्धि भी ग्राह्य है। जो भी हम से सम्बन्ध रखता है उससे पवित्रता की अपेक्षा की जाती है। जहाँ भी हम रहते हैं वहाँ साफ-सुथरा होना चाहिये। शरीर की पवित्रता के पश्चात् आन्तरिक शुद्धि की बात आती है। इसके अन्तर्गत मन, बुद्धि और आत्मा का समावेश है। इनको शुद्ध करने की विधि मनु जी बताते हैं-

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।।
-मनु० ५.१०८

जल से शरीर की, सत्य से मन की, विद्या व तप से आत्मा की और ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है। केवल नित्य स्नान करने से ही काम नहीं चल जाता। सर्वाङ्गशुद्धि के लिये सत्य बोलना, सत्य व्यवहार करना, सत्य को ही धारण करना, विद्यार्जन करना, तप करना तथा ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि ने मन की पवित्रता के सम्बन्ध में बताया है कि जिस स्थिति में परमात्मा को प्राप्त करने के उद्देश्य से जप-ध्यानादि द्वारा मन्थन किया जाता है और प्राणायाम की क्रिया द्वारा प्राण को वश में किया जाता है; जहाँ आनन्द ही आनन्द प्रकट होता है, उस समय मन सर्वथा शुद्ध हो जाता है-

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्रा-धिरूध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः।।
-श्वेताश्वतरोपनिषद् २-६

मनु जी ने शुद्धि के कतिपय साधनों को गिनाया है कि ज्ञान-तप-अग्नि-आहार-मिट्टी-मन-जल-लिपाई-वायु-कर्म-सूर्य-समय ये शुद्धि के साधन है। व्यावहारिक जीवन में धन का उपयोग करना होता है। मनु जी का कहना है कि धन की शुद्धि सबसे पहले होनी चाहिये। सब प्रकार की शुद्धियों में अर्थ की शुद्धि सबसे बढ़कर है। जो धन कमाने में पवित्र है ; वही वास्तव में पवित्र है। मिट्टी अथवा जल की शुद्धि वास्तविक शुद्धि नहीं है-

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परे स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।
-मनु० ५-१०६

विविध पदार्थों की शुद्धि मनु जी की दृष्टि में-सुवर्ण आदि चमकदार धातुओं, हीरा-मणियों और पत्थर से बनी सब वस्तुओं की शुद्धि व राख, जल और मिट्टी से होती है। सोने-चाँदी की शुद्धि जल के साथ-साथ अग्नि से भी होती है। ताँबा, लोहा, काँसा, पीतल, टिन और सीसे से बने बर्तनों की सफाई खारे-खट्टे जलों से होती है। तरल पदार्थों को छानकर, ठोस पदार्थों को पोंछकर और काष्ठनिर्मितों को छील कर शुद्ध करें। यज्ञ के पात्रों को हाथ से मांज कर पानी से धोना चाहिये। चिकने पात्र उष्ण जल से साफ होते हैं। चमड़े और बेंत से बनी हुई वस्तुओं की शुद्धि वस्त्रों की तरह होती है। घास-फूँस व काठ जल के छींटें से शुद्ध होता है। घर को बुहारने व लीपने से तथा मिट्टी के बर्तन को दुबारा पका कर शुद्ध करते हैं। मिट्टी के बर्तन से यदि शराब-मल-मूत्र-थूक-पीप-रक्त का स्पर्श हो जाय तो उसकी शुद्धि नहीं होती। भूमि की शुद्धि बुहारने-लीपने-जल छिड़कने, छीलने और गायों के रहने से हो जाती है। कारीगर का हाथ, दुकान में बेचने के लिये रखे गये पदार्थ तथा ब्रह्मचारी को दी गयी भिक्षा नित्य शुद्ध हैं।

भौतिक जगत् के उपभोग के लिये शुद्धि की विश्वसनीयता अनिवार्य है; हम उसी पदार्थ की कामना करते हैं जो शुद्ध हो क्योंकि शुद्ध से शुद्ध विचार बनते हैं। भोजन करते समय भोज्य पदार्थों के साथ-साथ भावनाओं की शुद्धि भी अपेक्षित है, इससे भोजन गुणकारी होता है। हमारे अन्तःकरण की शुद्धि हमें परमेश्वर तक पहुँचा देती है। किसी कार्य को करते समय मन और बुद्धि का योग तभी सम्भव है जबकि दोनों पवित्र हों। परमात्मा शुद्ध है अतः उसकी उपासना शुद्ध स्त्रोतों से, शुद्ध हृदय से तथा पवित्र वचनों से की जाती है, तब वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है। परम पावन परमेश्वर का आश्रय ग्रहण करने पर पवित्र प्रेरणा होगी और हम पवित्र कार्य करेंगे। पवित्र कार्यों के सम्पादन से हम सदैव पवित्र रहेंगे। एक मन्त्र में ऐसी ही प्रार्थना की गयी है-

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः।। **-ऋ० ८.९५.८**

'हे इन्द्र आप शुद्ध हैं हमें आकर सहारा दें। पवित्र; आप अपनी निर्दोष रक्षण आदि क्रियाओं से हमारा हाथ पकड़ें। शुद्ध ऐश्वर्य को धारण करायें। हे सोम्य ! (सोम गुण युक्त) मेरे आत्मन्। अविद्यादि दोषों से रहित होकर तू आनन्दित हो।'

उक्त मन्त्र में शुद्ध आत्मा को पावन परमात्मा से संयुक्त करने की बात कही गयी है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलने वाला मनुष्य शुद्धि के रहस्य को समझ लेता है, जितना ही वह शुद्ध होता जाता है उतना ही आनन्द भोगता है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय......

शारीरिक स्वास्थ्य

प्राचीन काल में प्राणी दीर्घजीवी होते थे। इसका कारण सम्भवतः उनका सहज प्राकृतिक जीवन था जो आनन्द सहज रूप में है वह बनावटी रूप में नहीं। जहां आनन्द है वहां निश्चिन्तता है और स्वस्थता भी है। स्वस्थ रहना आयु को बढ़ाना है। जो व्यक्ति स्वस्थ नहीं है, रूग्ण रहता है उसकी जीवन अवधि भी कम हो जाती है। दीर्घ आयु के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निश्चिन्त एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करना आवश्यक है। आरोग्य शास्त्र की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक सुखमयता कम महत्त्व नहीं रखती, परन्तु उसमें दीर्घायु के लिए कुछ ऐसे साधनों का भी उल्लेख किया है जो केवल शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। उपयुक्त जलवायु और हितकर पुष्टिप्रद भोजन के साथ निवास की स्वच्छता की आवश्यकता भी आरोग्य शास्त्र में प्रमुख मानी गई है। इन में से किसी एक का अभाव भी स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। इसके लिए उचित शिक्षा-दीक्षा की भी अपेक्षा रहती है। अज्ञान में मनुष्य त्रुटियां कर सकता है। ये त्रुटियां तथा भ्रांतियां मन और शरीर दोनों पर अपना प्रभाव डालती हैं। इसलिए बच्चों को प्रारम्भ से ही अच्छी आदतें सिखानी चाहिए। बच्चा प्रारम्भ से ही माता-पिता के वातावरण में रहता है और माता-पिता जैसा आचरण करते हैं वैसा ही आचरण बच्चे के जीवन में भी उतरने लगता है। भाषा भी वह उन्हीं की बोलता है, विचार भी उन्हीं से सीखता है और कार्यप्रणाली भी उन्हीं से ग्रहण करता है। अतः घर का जैसा वातावरण है बच्चा वैसा ही बनता है। इससे सिद्ध होता है कि चिरंजीवी बनने के लिए परिवार का वातावरण विशेष महत्त्व रखता है।

मानव सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बिना रह नहीं सकता। समाज से ही वह सब कुछ सीखता है। परिवार का वातावरण ही समाज का अंग है। अनेक परिवार मिलकर समाज का निर्माण करते हैं। परिवार बढ़ते-बढ़ते समाज और राष्ट्र की मर्यादाओं से आगे निकल कर विश्व परिवार में परिणत होता है। हमारी संस्कृति ने वसुधैव कुटुम्बकम् का उद्घोष इसी आधार पर किया है। वेद में सम्भवतः इसी हेतु एकवचन का नहीं, बहुवचन का प्रयोग प्रायः हुआ है। प्रार्थनाएं नः शब्द का अधिक प्रयोग करती हैं। अहं और मम भी आते हैं परन्तु बहुत कम। यह बहुवचनीय प्रयोग सामाजिकता, राष्ट्रीयता अथवा विश्वबन्धुता का परिचायक है। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। समाज में सभी को मिलकर चलना चाहिए। सामाजिक उन्नति और समृद्धि के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। दीर्घ जीवन भी एक की नहीं सम्पूर्ण समाज की आवश्यकता है। यदि एक सौ वर्ष का है और अन्य उसी के सामने दस, पन्द्रह और बीस पच्चीस की आयु में चल बसता है तो वह भी सुखी नहीं रह सकेगा और परिणामतः उसकी भी आयु क्षीण होने लगेगी। कहावत है खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। यदि समाज में कुछ व्यक्ति स्वस्थ हैं और सुखी हैं तो समाज के अन्य सदस्य भी उन्हें देखकर स्वास्थ्य और सुख की इच्छा करेंगे। यदि घर में कोई व्यक्ति संक्रामक रोग से ग्रसित हो जाता है तो घर के अन्य सदस्यों पर भी चाहे वे जितने स्वस्थ हों प्रभाव पड़ता ही है। रोग संक्रामक न हो साधारण हो तो भी अन्य व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता ही है। कहते हैं रोगी से अधिक उसकी देखभाल करने वाला अधिक कष्ट उठाता है। उन्हें रोग न भी हो तब भी स्वास्थ्य तो गिर ही जाता है। चिंता चिता से भी अधिक भयंकर है। रोगी के सम्बन्ध में परिवार वालों का चिन्तित होना अनिवार्य है। हम सभी सामान्य व्यक्ति हैं जिनके ऊपर सांसारिक क्रियाकलापों का प्रभाव पड़ता ही है। अतः परिवार तथा समाज को स्वस्थ रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का स्वस्थ होना आवश्यक है।

रोग आयु को कम कर देता है। स्वस्थ व्यक्ति अधिक देर तक जीवित रहता है, रोगी अल्पायु होता है। शरीर एक यन्त्र है। यदि यह ठीक ढंग से चल रहा है, इसकी रुधिर संचरण गति में, नाड़ी संस्थान के कार्य में और इन्द्रियों के सहज व्यापारों में यदि कोई बाधा नहीं आती तो यह सुचारू रूप से चलता रहता है। मानवकृत यन्त्रों की भी यही दशा है।

जो मनुष्य शरीर परमात्मा ने हमें दिया है उसे सुरक्षित रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। बीमारियां अन्य योनियों में भी होती हैं। पशु पक्षियों को भी बीमार पड़ते देखा गया है। वृक्षों और लताओं को भी रोग के कीटाणु ग्रसित करते ही रहते हैं। कभी-कभी दैवी प्रकोप से सभी को समान रूप से दुःख मिलता है। इनके कारण इन सबकी आयु क्षीण होती रहती है। रोगों के दैवी उपचार भी चलते हैं और मानवीय उपचार भी। इनसे निरोगता भी आती है। कुछ उपचार अन्तर्निहित प्रकृति स्वयं करती रहती है। मनुष्य के प्रयत्न करने पर भी रोग आते ही हैं और मृत्यु को अपेक्षाकृत समीप खींच लाते हैं। जीवन अवधि कम हो जाने पर मनुष्य के पुरूषार्थ करने की मात्रा पर भी प्रभाव पड़ता है। परिणामतः मनुष्य जो कुछ भी करना चाहता है उसे नहीं कर पाता है। अतः मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। उसे अपने खान-पान की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। शरीर के अनुकूल ही उसे अपनी दिनचर्या को बनाने का प्रयास करना चाहिए। अपनी दिनचर्या, सोना जागना, व्यायाम करना, आदि सभी का नियत समय होना चाहिए। दिनचर्या के नियमित हो जाने पर ही मनुष्य स्वस्थ और सुखी रह सकता है।

-प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

आओ, जन्म-मरण व मोक्ष से जुड़े कुछ विषयों की चर्चा करें ?

-ले० श्री मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून

मनुष्य जो भी कार्य करता है उसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। कार्य में प्रवृत्त होने से पहले बुद्धिमान व्यक्ति अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। उस उद्देश्य व लक्ष्य के अनुरूप अपेक्षित कार्य ही वह करता है। कार्य पूरा हो जाने पर परिणाम का समय आता है। कई बार परिणाम उद्देश्य व लक्ष्य के अनुरूप आता है और कई बार नहीं आता। इसके अनेक कारण होते हैं। यदि परिणाम उद्देश्य के अनुरूप आ जाता है तो कर्ता को प्रसन्नता होती है और यदि नहीं आता तो दु:ख होता है। वह दु:ख उसे झकझोरता है कि परिणाम उद्देश्य के अनुरूप क्यों नहीं आया, तब उसे अपने कार्यों में कहीं त्रुटि की सम्भावना प्रतीत होती है या ज्ञान की कमी के कारण भी कार्य भली प्रकार से नहीं हो पाता है। सभी कमियों को जानकर व ज्ञानी व अनुभवियों की सहायता एवं मार्गदर्शन से वह पुन: उस कार्य की कमियों को दूर कर अपना उद्देश्य व लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। यह बात तो सामान्य कार्यों के लिए होती है। अब हम विचार करेगें कि हमारे जन्म के कारण व जीवन के उद्देश्य क्या हैं। लक्ष्य की प्राप्ति के उपायों व साधनों पर साथ ही विचार करेगें।

हम देखते हैं कि संसार में प्राकृतिक व्यवस्था चल रही है। बच्चा जन्म लेता है। माता का दूध उसका भोजन होता है। वह स्तनपान करना पहले से ही जानता है या यह कह सकते हैं कि वह इस कार्य को पहले से ही सीख कर आया है। माता के स्वभाव में अपने शिशु से अवर्णनीय ममता एवं स्नेह होता है। वह उसे दुग्धपान कराने व उसका पालन पोषण करके प्रसन्नता का अनुभव करती है। वह नि:स्वार्थ रूप से अपने बच्चे का उपकार करती है। वह ऐसा करते हुए अपने पुत्र या पुत्री से कालान्तर में अपने जीवन में कुछ सेवा, धन व अन्य लाभ की किंचित इच्छा नहीं रखती। शिशु बढ़ता रहता है और कुछ वर्षों में बालक बन जाता है फिर युवा तथा उसके पश्चात स्थिरता की अवस्थायें आती हैं एवं अन्त में वृद्धावस्था आती है। इसके कुछ काल बाद में मृत्यु हो जाती है। संसार भर में हम यही देख रहे हैं। हां, सभी स्थानों पर बाल्यकाल में लोग विद्यालयों में अध्ययन करते हैं। उसकी समाप्ति पर व्यवसाय कर धनोपार्जन करते हैं, विवाह करते हैं, कुछ सन्तानें उनसे जन्म लेती हैं व उनके द्वारा माता-पिता के रूप में सन्तानों को जन्म देकर उनके पालन पोषण आदि का क्रम चलता है। जब जन्म के कारणों पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि हमारा व सभी मनुष्यों का शरीर जड़ व चेतन पदार्थ का अद्भुत समन्वित रूप है। हम व्यवहार में बोलते हैं कि यह मेरा शिर, आंख, नाक, कान, मुंह, हाथ, पैर व शरीर है। कोई यह नहीं कहता कि सभी अंगों से युक्त शरीर ही मैं हूं।

इससे सिद्ध होता है कि हमारा शरीर व उसके सभी अंग हमारे हैं अवश्य परन्तु ''मैं'' नहीं हैं। 'मैं' शरीर व उसके अन्यान्य अंगों से पृथक एक चेतन सत्ता है जिसकी शरीर में उपस्थिति से यह शरीर चलता-फिरता, चिन्तन-मनन, सोना-जागना, घूमना-फिरना, अध्ययन-अध्यापन आदि करता-कराता है। इसे हम आत्मा व जीवात्मा कहते हैं। यह जीवात्मा ज्ञान व गति-कर्म-क्रिया गुणों से युक्त है। विज्ञान का एक नियम है कि कोई भी पदार्थ न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। हां भौतिक पदार्थ जो कि स्थूल होते हैं, उनका स्वरूप परिवर्तन हो सकता है, वह स्थूल से सूक्ष्म किये जा सकते हैं। वह अत्यन्त सूक्ष्म होकर दृष्टि के अगोचर हो जाते हैं अर्थात् आंखों से दिखाई नहीं देते। जीवात्मा क्योंकि अत्यन्त सूक्ष्म व अभौतिक व चेतन तत्व है, अत: यह और सूक्ष्म नहीं किया जा सकता अर्थात् यह अविभाज्य है। अनादि, अनुत्पन्न व नित्य तो यह है ही। अब विचार करना है कि जब यह जीवात्मा इस जन्म में माता-पिता के द्वारा मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शिशु के रूप में जन्म लेता है तो जन्म से पूर्व भी यह ब्रह्माण्ड में कहीं तो रहा ही होगा ? हमारा यह ब्रह्माण्ड 1,96,08,53,114 वर्ष पहले ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। ईश्वर से इसलिए कि और कोई चेतन तत्व ऐसा नहीं है जो इसकी रचना, इसका धारण व पोषण कर सके। हम देखते हैं कि मनुष्य योनि में मनुष्य 60-70 से 100 वर्ष की आयु का होकर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। एक दिन हम सभी मृत्यु का ग्रास बनेगें। अधिकतम् 100 वर्ष व कुछ अधिक वर्ष जन्म व मृत्यु के मध्य मनुष्य के जीवन-काल की अवधि है। यदि सृष्टि काल को 100 से विभाजित किया जाये तो 1,96,08,531 वर्ष की अवधि आती है। यदि हम फिलहाल पशु, पक्षी आदि जन्मों को छोड़कर अपना बार-बार मनुष्य जन्म ही मान लें तब भी इस सृष्टि काल में कम से कम हमारे 1,96,08,531 बार जन्म हो चुके हैं। इतनी लम्बी व इससे भी कहीं अधिक लम्बी यात्रा हम कर चुके हैं और हमारी यह यात्रा अब भी जारी है। इससे पूर्व के सृष्टिकालों की गणना हमने छोड़ दी है। अनन्त काल से हम हैं और अनन्त काल तक रहेगें। यह हमारी कैसी आश्चर्जजनक व लम्बी यात्रा है ?

अब हम विचार करते हैं कि हम बार-बार जन्म लेकर कुछ अच्छे या कुछ बुरे कर्म करते हैं। इसके साथ हम व्यवसाय करते हैं, विवाह करते हैं, हमारी सन्तान होती हैं, हम एक या अधिक निवास बनवाते हैं, कार या अन्य वाहन भी खरीद सकते हैं, बैंक-बैलेन्स, धन-सम्पत्ति की वृद्धि, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, उनका व्यवसाय और उनके विवाह आदि करते हैं। यह सब क्या हैं, यह सब हमारे कर्म व पुरूषार्थ का रूप हैं। कर्म भी हमें मुख्यत: दो प्रकार के दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें एक आत्मा के अनुरूप आचरण होता है और दूसरा आत्मा के विरूद्ध आचरण होता है। यह अच्छे व बुरे कर्म पुण्य व पाप कहलाते हैं। जिस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में अच्छा कार्य पुरस्कृत होता है और बुरा काम अपराध की कोटि में आता है व दण्डनीय होता है, इसी प्रकार से हमारे यह कर्म ईश्वर की दृष्टि में सुख व दु:ख का कारण होते हैं। सुख ईश्वर की ओर से अच्छे व पुण्य कर्मों का पुरस्कार है व बुरे कर्म, जिससे अन्य प्राणियों के हितों की हानि होती है, वह ईश्वर की ओर से दण्ड रूप में दुखों की प्राप्ति हैं। मृत्यु आने पर हमारे कुछ कर्मों के फलों का भोग शेष रह जाता है, जिसे प्रारब्ध या भाग्य कहा जाता है। इस कारण इस प्रारब्ध के अनुसार ''ईश्वर'' एक परीक्षक, नियामक व न्यायाधीश की भांति मनुष्यों को उसके कर्मों के फल के रूप में, मृत्यु के बाद, नया जन्म देता है। जीव-योनि (मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि असंख्य जीवयोनियां) का निर्धारण प्रारब्ध, जिसे पाप व पुण्य रूपी संचित कर्म मान सकते हैं, के आधार पर होता है और इस नई योनि व जाति में आयु व भोग का निर्धारण भी प्रारब्ध के आधार पर ईश्वर करता है। भोग सुख व दुख के रूप में जीवों को प्राप्त होते हैं। आयु किसी भी योनि में जन्म व मृत्यु के बीच के जीवन काल को कहते हैं। मृत्यु के बाद नई योनि में जन्म प्रारब्ध के आधार पर ही होता रहता है।

हम देखते हैं कि जन्म अर्थात् प्रसव के समय जीव को दुख होता है। मां के गर्भ में 10 महीनों तक उलटे लटके रहना भी दुख की ही स्थिति है। मृत्यु तो सबके लिए दुखदायी है ही, जीवन काल में सुख के साथ-साथ दु:ख भी मिश्रित रहते हैं। सुख स्थाई कभी नहीं होता। यहां तक कहा जाता है कि सुख का परिणाम दुख व दुख का परिणाम सुख है। यदि कोई व्यक्ति सुखी है तो निश्चित रूप से आने वाले समय में वह अवश्य दुखी होगा। यहां हम सुख को भौतिक पदार्थों से मिलने वाला सुख मान रहे हैं। सुख में दुख मिश्रित हैं जो मिलेगा ही।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

गीता के जीवनोपयोगी तीन श्लोक

-ले० खुशहाल चन्द आर्य, गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड, कोलकत्ता

मैंने डा. महेश विद्यालंकार द्वारा लिखित ''सरलगीता ज्ञान'' शीर्षक नाम की पुस्तक पढ़ी। पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। यह पुस्तक केवल पठनीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय भी है। डॉ. जी ने इस पुस्तक में गीता के मुख्य-मुख्य बिन्दुओं को बड़ी सरल भाषा में समझाया है। जिसको एक साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है। डॉ. जी ने इस पुस्तक को लिखकर मानव-मात्र का बड़ा कल्याण व उपकार किया है। गीता ज्ञान केवल आदर्श ज्ञान ही नहीं बल्कि जीवन के पग-पग पर काम आने वाला ज्ञान है। इसलिए इस पुस्तक को हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए ताकि वह अपने जीवन को सफल बना सके। मैंने इस पुस्तक को सरसरी नज़र से पूरा पढ़ा है। वैसे तो गीता के सभी श्लोक जीवन में काम आने वाले हैं। उनमें भी मुझे तीन श्लोक इतने अधिक पसन्द आए जिनको जीवन में उतारने से जीवन केवल सफल ही नहीं बल्कि जीवन को उत्तरोत्तर उन्नति के पथ पर बढ़ाते हुए जीवन को सार्थक भी बना सकते हैं। ये तीनों श्लोक एक-दूसरे के पूरक हैं और जीवन के लिए अति उपयोगी भी हैं। श्लोक इसी भांति हैं।

1. योगस्थः कुरू कर्माणि, सक्त्वा संग धनञ्जय-हे अर्जुन! संसार में रहते हुए अपने धर्म तथा कर्त्तव्य को निभाते हुए, अपने आत्मज्ञान को जागृत रखते हुए, अपने जीवन लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते चलो। कठिनाईयों से घबराओ नहीं, डरो नहीं। जीवन का ही नाम संघर्ष है। जो संघर्ष से डरते हैं, वे कायर कहलाते हैं। गीता संसार से भागने की बात नहीं करती है। वह तो कहती है-भागो नहीं, जागो ज्ञानपूर्वक, नियमपूर्वक तथा त्यागपूर्वक संसार का भोग करो और घर-गृहस्थी में रहते हुए ज्ञान, कर्म और उपासना को पकड़े रहो। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के माध्यम से मानव को जीवन मुक्त होने का संदेश दिया है। गीता जीने की कला सिखाती है।

गीता प्रेरणा देती है-सच्चा इन्सान वही है जो सच्चाई व ईमानदारी के रास्ते पर चलता हुआ हर परिस्थिति में अपने को सन्तुलित बनाए रखता है और अपने धर्म और कर्म नहीं छोड़ता है।

2. यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धन-जो कर्म किए जाएं, वे यज्ञार्थ व परोपकार के लिए हों और भगवान को समर्पण करके करें। तभी उन कर्मों में अनासक्ति-भाव आएगा, स्वार्थ भाव घूटेगा और परमार्थ भावना जगेगी। ऐसा व्यक्ति दुनिया में रहता हुआ, सारे काम, धन्धे सम्भालता हुआ भी अध्यात्मिक व्यक्ति है तथा साधु व त्यागी है। परोपकार एवं त्याग-भावना से किए हुए सभी कार्य ''यज्ञ'' कहलाते हैं। जो भी अच्छे कर्म हैं, वे सभी यज्ञ हैं। सृष्टि में परमात्मा का अखण्ड यज्ञ चल रहा है।

यज्ञ की भावना से सृष्टि में खुशहाली बनी रहती है। जो मनुष्य स्वार्थभाव से ऊपर उठकर कर्म करते हैं, वे कर्म उनके लिए बन्धन नहीं बनते हैं। कर्म-बन्धनों से ही मानव को सुख-दुःख मिलता है। कर्म-बन्धन से छूटना ही मुक्ति कहलाता है। अहंकार-बुद्धि से किए हुए कर्म व्यक्ति को बन्धन में डालते हैं।

गीता के उपदेश-

3. लिप्यते न सपापने पदम पत्र मिवाम्भसा-मनुष्य को दुनिया में ऐसे रहना चाहिए जैसे पानी में कमल रहता है। पानी जितना ऊपर चढ़ता जाता है, कमल उतना ऊपर उठता जाता है। पत्ते पर पानी नहीं टिकने देता है। गीता का यही जीवन-दर्शन है। गीता ''कमलवत्'' जगत् में रहना सिखाती है। दुनिया में रहो, मगर उसमें फंसो नहीं। बाजार से गुजर जाओ मगर बाजार के लुहावने-सुहावने आकर्षण तुम्हें खींच न पाएं। संसार के भोग-पदार्थ, आकर्षण, धन-दौलत और घर परिवार आदि में इतने मत डूब जाओ कि अपना स्वरूप तथा लक्ष्य को भूल जाओ। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-''यह संसार तुम्हारे भोग के लिए मिला है। एक दिन तुम्हें इसको छोड़ना होगा। यदि छोड़ने का भाव मन में बनाए रखोगे तो छोड़ते हुए दुःख, कष्ट व परेशानी न होगी। दुःखी, परेशान व बेचैन वही लोग होते हैं जो अज्ञानतावश संसार को ही सब कुछ समझ लेते हैं। वे जगत् को पाना और भोगना ही जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं।''

आज दुनिया धर्म-कर्म, उद्देश्य तथा भगवान् को भूलकर सुख-साधनों और धन-दौलत आदि के लिए पागलों की तरह दौड़ी जा रही है। इसलिए दुःखी, अशान्त व परेशान है। भोग-पदार्थों का कोई अन्त नहीं है। वर्तमान जगत् में भोग की चीज़ों का जाल बिछा हुआ है। आम आदमी इन भोगों को पाने तथा भोगने के लिए नशे एवं पागलपन में दौड़ा जा रहा है। अच्छी दौड़ लगी है। हर आदमी जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक भोगने व संग्रह की चाह में भाग रहा है। आज जो धन कमाया व इकट्ठा किया जा रहा है। उसके पीछे इन्द्रियों के भोगों की ललक है। भोगों से जो रोग उत्पन्न होंगे, इन रोगों में अधिकांश धन खर्च हो रहे हैं।

गीता सावधान करती हुई चेतावनी देती है कि आज तक सांसारिक भोग-पदार्थों और सुविधाओं आदि से कोई भी तृप्त व सन्तुष्ट नहीं हुआ है। जितना मनुष्य भोगों को भोगता जाता है, उतनी ही भोगों की प्यास बढ़ती जाती है। जलती हुई आग में जितना घी डालते जाएंगे, उतनी ही आग और तेज़ होती जाएगी और जितने भोगों को भोगते जाओगे, उतनी ही अतृप्ति व अशान्ति और बढ़ेगी। एक अटल नियम है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं-''संसार के पदार्थों का उतना ही उपभोग और उपयोग करो, जितनी ज़रूरत है। अधिक भोग मनुष्य को पतन की ओर ले जाते हैं और ये आत्मिक बल को क्षीण कर देती है। भोग-पदार्थ इन्द्रियों की शक्ति कमज़ोर बना देती है। इन्हीं के कारण अनेक प्रकार के रोग शरीर को घेर लेते हैं। मनुष्य असमय में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति अपनी आवश्यकताएं तथा इच्छाएं कम से कम रखता है। वह उन्हीं साधन-सुविधाओं व भोग-पदार्थों का संग्रह करता है जो उसके जीवन और उद्देश्य में सहायक है। बाकी को छोड़ देता है।''

गीता का स्पष्ट चिन्तन है कि भोग-पदार्थों, धन-दौलत, सुख-सुविधाओं आदि के पीछे सब कुछ भुलाकर पागलों की तरह मत दौड़ो। यह माया व भोग-पदार्थ तुम्हें ठग लेंगे। जो भी इनके पीछे दौड़ा, वही अन्त में निराश होकर लौटा। ये चीज़ें समाप्त नहीं होती, परन्तु जीवन समाप्त हो जाता है। माया-मोह का कोई अन्त नहीं है। इसे जितना फैलाते जाओ, यह और फैलता जाता है। जैसे चूल्हे में कितनी भी लकड़ियां डालते जाओ, कभी चूल्हे का पेट नहीं भरता है। ऐसे ही माया के लालची और भोगों के दास व्यक्ति कभी तृप्त व सन्तुष्ट नहीं होते हैं। ऐसे व्यक्ति सारा जीवन व्यर्थ गंवा जाते हैं। जब ठोकर लगती है, आंख खुलती है, तब तक जीवन बहुत आगे निकल चुका होता है। गीता का इस बारे में यही संक्षिप्त सार और सन्देश है।

भोग साधनों का उतना ही संग्रह व इच्छाएं करो, जितनी जीवन के लिए बहुत ज़रूरी है। जितनी कम इच्छाएं तथा जीवन की ज़रूरतें कम होंगी, उतने झंझट व संकट कम होंगे। जो साधन साध्य में बाधक बनें, उन्हें तुरन्त छोड़ने में ही कल्याण है। जीवन का साध्य तो संसार में रहते हुए अपने धर्म-कर्म का निर्वाह करते हुए आत्मज्ञान को प्राप्त करके प्रभु-सान्निध्य प्राप्त करना है। इन जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति में जो भोग-पदार्थ, साधन-सुविधाएं, मित्र साथी आदि सहयोगी बनें, उन्हें अपना लो, बाकी को छोड़ने व उनके प्रति तटस्थ भाव अपनाने में ही कल्याण है।

वर चाहिए

Wanted Suitable match for are innocent issuless divorcee girl D.O.B. Dec 1981, Colour fair, Height 5'-4", B.A.G.N.M. Staff nurse, Working in a pvt. Nursing Home. Brother Sister settled in U.K. Parents running own High School. Serving boy preffered OR. medical Profession, Arya Family.

Contact No : 7837048487
09478449309

पृष्ठ 4 का शेष-आओ जन्म-मरण.....

(गतांक से आगे)

इसीलिए बहुत से विवेकी लोग सुख में सम अवस्था बनाने की बात कहते हैं। इसका अर्थ है कि यदि सुख की अवस्था है तो सुखों का भोग न करके ईश्वर उपासना में समय को व्यतीत कर उस सुख के परिणाम दुख से बचा जा सकता है क्योंकि ईश्वर के गुण, कीर्तन या स्तुति व प्रार्थना में व्यतीत होता है, तो इसका परिणाम आत्मा में प्रसन्नता, उत्साह, सबके प्रति सदभावना, स्वाध्याय व ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना में प्रवृति और उत्साह के रूप में सम्मुख आता है। जब-जब जीवन में दुख आते है। सभी लोग उसकी निवृति के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो दुखों को पसन्द करता हो। इससे यह परिणाम निकलता है कि दुखों की निवृति करना ही जीवन का लक्ष्य है और दुखों की निवृति करने में सफलता ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना व उपासना व वेद विहित श्रेष्ठ कर्मों को करने से ही प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं। यह उपसना आदि भी यदि सत्य पर आश्रित व आधारित होगी, तभी सफलता प्राप्त हो सकती है। आज देश व विश्व में नाना मत, पन्थ व सम्प्रदाय आदि हैं जिनकी अपनी उपासना पद्धतियां हैं। इन सबके अनुष्ठानों से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा इसलिए कि सही मार्ग पर न चलकर अन्य-अन्य मार्ग पर चले और चाहें कि लक्ष्य पर पहुंच जाये तो जैसे वहां लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, यात्री को पहुंचना कहीं होता है और पहुंचता कहीं है। उसी प्रकार से सभी मत-पन्थों की स्थिति है। लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सत्य मार्ग को जानकर उस पर चला जाता है। वह सत्य का मार्ग वेद सम्मत योग की पद्धति है। संसार के प्रत्येक व्यक्ति को आंख बन्द कर अपने लिए मत व पन्थ या सम्प्रदाय का चयन न कर बुद्धि का प्रयोग करके, सभी मतों के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का अध्ययन कर बुद्धि को जो सबसे उचित लगे, उसे ही अपनाना चाहिये। इसके साथ नित्य-प्रति चिन्तन-मनन व स्वाध्याय या सत्य-वक्ताओं के उपदेशों को सुन कर व उनसे चर्चा व शंका समाधान कर अपने लिए सत्य मत-मार्ग का निर्धारण करें जो विवेकपूर्ण लगे, उसे अपनाना चाहिये।

इस विश्लेषण से हम जान गये हैं कि हमारा जन्म हमारे पूर्व किये हुए शेष कर्मों के भोग के लिए परमात्मा से मिलता है। जन्म, जीवन व मृत्यु में अनेक प्रकार के दुख आते हैं, उनसे छूटने के उपाय हमें जानने हैं और उनका आचरण करना है। 'धर्म' की एक परिभाषा यह भी हो सकती है जो कर्म मनुष्य को दुख से छुड़ायें उन्हीं कर्म-समुच्चय का नाम धर्म है। अधिक भोग अर्थात् इन्द्रियों से अधिक विषय सेवन करने का परिणाम रोग व दुख होता है अतः सुखों की अधिक इच्छा न कर जीवन को सत्य, परोपकार, सेवा, ईश्वरोपासना, यज्ञ, पुरूषार्थ आदि कार्यों में व्यतीत करना चाहिये। ईश्वरोपासना व योगाभ्यास एक ही हैं, इनकी सफलता पर ईश्वर साक्षात्कार होता है। ईश्वर से इसके पुरस्कार स्वरूप जन्म-मरण से छुट्टी व अवकाश मिलता है जिसे दुखों से मुक्ति, जन्म व मरण से छुट्टी या मोक्ष कहते हैं। मोक्ष मिल जाने पर 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्षों तक जीव अर्थात् हम जन्म व मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं और ईश्वर के सान्निध्य में रहकर ईश्वर प्रदत्त अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न होकर आनन्द, प्रसन्नता, सन्तोष सहित अन्य मुक्त जीवों के साथ मिल-जुलकर रहते हुए तथा लोक-लोकान्तरों में घूमते या भ्रमण करते हुए आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करते हैं। महर्षि दयानन्द के अनुसार मोक्ष अवस्था में जीव परमानन्द की अवस्था में रहता है तथा ईश्वर से प्राप्त अव्यवाहृत गति से ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र आ जा सकता है। उसे किसी प्रकार का नाममात्र का भी दुख नहीं होता। स्वाभाविक है कि जब शरीर ही नहीं है तो फिर दुख कैसा ? दुख तो भौतिक शरीर को ही होता है। जहां तक आनन्द का प्रश्न है, मुक्त जीव परमानन्द को प्राप्त रहता है जिसका कारण है कि मोक्ष में जीव का परमात्मा से सम्पर्क व सम्बन्ध जुड़ा रहता है। विद्युत से जुड़ने से प्रकाश देने वाला बल्ब प्रकाशित रहता है, उसी प्रकार से आनन्दस्वरूप परमात्मा से जुड़े हुए रहने से जीवात्मा को परमानन्द की प्राप्ति मुक्ति की अवस्था में हर क्षण व हर पल रहती है। मोक्ष अवस्था में जीवात्मा को ईश्वर से अनेकानेक शक्तियां प्राप्त रहती हैं। वह जिस शुभ कार्य की इच्छा करता है, वह ईश्वर नियमों से पूरा हो जाता है। हम समझते हैं कि इस लेख की विषय वस्तु जान व समझ लेने पर प्रत्येक व्यक्ति को वैदिक धर्म की शरण में आकर ईश्वरोपासना व वेदानुसार आचरण कर जीवन को सफल बनाना चाहिये। हमने इस लेख में जीवों को जन्म-मरण के चक्र से छूट कर मोक्ष प्राप्ति के वैदिक सिद्धान्त को सरल शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन विषयों को विस्तार से जानने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ सबसे अधिक उपयोगी एवं सहयोगी हैं। सभी को इस ग्रन्थ का एक बार अध्ययन अवश्य करना चाहिये। आशा है कि पाठक इस लेख को पसन्द करेगें।

पृष्ठ 2 का शेष-यज्ञ पवित्रता का.....

जिसका आत्मा शुद्ध होता है वही वास्तव में शुद्ध है। शुद्ध अन्न-जल-वायु-औषधि आदि का सेवन करने से रस-रक्त भी शुद्ध होगा। प्राणायाम से प्राण की शुद्धि होती है जिससे इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि शुद्ध होते हैं। थोड़ा भी अभक्ष्य पदार्थ का सेवन करके मनुष्य अपवित्र हो जाता है। उसकी विचारधारा कलुषित हो जाती है। ऐसा व्यक्ति कभी अच्छा सोच सके बहुत कम सम्भावना है। अविद्या के कारण भी शुद्धता की परख नहीं हो पाती। सबसे पहले अपने रहन-सहन और खान-पान को सुधार कर ही हम शुद्धता को धारण कर पायेंगे। यह शुद्धि का मूलमन्त्र है। 'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि' आहार शुद्ध होने पर विचार शुद्ध होते हैं। विशेषकर छात्रों के लिये अभक्ष्य का सेवन हानिकारक है, उन्हें पदे-पदे बाधा प्रस्तुत होगी और अपने पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे। स्मृतिवर्धक औषधियों का सेवन करके स्मृति को पुष्ट किया जा सकता है परन्तु उससे पहले अभक्ष्य का परित्याग आवश्यक है। आचरण की शुद्धि से कर्मों की शुद्धि हो जाती है। सत्य बोलना, प्रतिज्ञा को पूरा करना, समय का पालन करना, अपने वचन की रक्षा करना, आरम्भ किये हुये कार्य को पूर्ण करना, ये आचरण की शुद्धता के प्रतीक हैं। शुद्ध आचरण वाला व्यक्ति सबका विश्वासपात्र होता है और समाज से अनेक प्रकार का लाभ प्राप्त करता है, अपने सभी अंगों की शुद्धि का ध्यान रखना चाहिये; किसी भी अंग से कुचेष्टा करने पर वह अंग अपवित्र हो जाता है। जो व्यक्ति एक बार चोरी कर लेता है फिर उसे संकोच नहीं होता और बड़ी-से-बड़ी चोरी आसानी से कर सकता है। शुद्धि के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द लिखते हैं-'नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, मान, स्थान सब शुद्ध रखें क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच उतना करना योग्य है जिससे मल-दुर्गन्ध दूर हो जाय।'

स्नान करने से शरीर शुद्ध होता है परन्तु इतना स्नान करें जितना आवश्यक हो। जो पदार्थ थोड़ा भी नशीला हो उसका सेवन नहीं करना चाहिये। मांसाहार से हिंसक स्वभाव बनता है और मनुष्य क्रूर हो जाता है। स्वभाव में विकृति न आ जाय इसके लिये शुद्ध कमाई का ध्यान रहे। व्यवसाय में थोड़ी हेरा-फेरी करने से पूरा परिवार उस रोग से ग्रसित हो जाता है। घूँसखोर की आय बढ़ती है तो वह संयम खो बैठता है और अनावश्यक चीज़ें घर में लाने लगता है। परिणामस्वरूप पत्नी तथा बच्चों की माँगें बढ़ती जाती हैं और उन्हें पूरा करने के लिये वह अधिक घूँस लेने लगता है। फिर वह फिजूलखर्ची का शिकार बन जाता है और एक दिन इतना बड़ा अपराधी बन जाता है कि उसे कठोर दण्ड दिया जाता है। इसलिये कभी भी अपवित्र धन घर में नहीं आना चाहिये। अपने दैनिक जीवन में शुद्धि का ध्यान रखना चाहिये।

ऋग्वेद में संकेत किया गया है कि जो पवित्रता को धारण करते हैं और वेदवाणी का आश्रय लेते हैं, परमात्मा उनके व्रत की रक्षा करता है-

पवित्रवन्तः परिवाचमासते
पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम्।
-ऋ० ८.७३.३

ईश्वर की कृपा से पवित्रता की रक्षा होती है। इसके लिये वेदवाणी का आश्रय लेना आवश्यक है। परमात्मा के आदेश का पालन हमें पवित्रतम बना देता है। नित्य पवित्रता की रक्षा करने से मनुष्य देवत्व को प्राप्त कर लेता है। अतः अपने पर थोड़ा भी सन्देह होने पर तत्काल शुद्धि कर लेना हमारा कर्त्तव्य है।

75वां जन्म दिवस मनाया

आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) में दिनांकः 01.06.2014 को आर्य समाज के यशस्वी, कुशल, कर्मठ, प्रधान श्री आत्म प्रकाश जी का 75वां जन्म दिवस बड़े हर्षो उल्लास के साथ मनाया गया। यज्ञ के उपरान्त इस शुभ अवसर पर आर्य समाज के उपप्रधान श्री देवपाल जी आर्य ने श्री आत्मप्रकाश जी के दीर्घ जीवन की प्रभु से कामना की एवं श्री आत्मप्रकाश जी के कार्यकुशलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की आर्य समाज के मन्त्री श्री महेन्द्रपाल विग ने श्री आत्मप्रकाश जी को फूलों का गुलदस्ता भेंट कर उनके मंगलमय जीवन की कामना की। यज्ञ के ब्रह्मा पंडित कर्मवीर शास्त्री ने सभी आर्य महानुभाव से अनुरोध किया कि वे सभी अपने त्योहार जन्मदिन आदि यज्ञ के द्वारा ही मनाया करें क्योंकि यज्ञ विश्व कल्याण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, श्री शास्त्री जी ने बताया कि यज्ञ से पंच महाभूतों की शुद्धि होती है। यज्ञ में जो हम शाक्लय डालते है वह चार प्रकार का घटक होता है, 1. रोगनाशक, 2. पुष्टिकारक, 3. बलवर्धक, 4. सुगन्धिदायक। सृष्टि के संरक्षण में यज्ञ का विशेष महत्त्व है। किन्तु आज मनुष्य प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है जिसके दुष्परिणामों का कहर उसे स्वयम् भुगतना पड़ रहा है। कहीं अति वृष्टि है, तो कहीं अनावृष्टि है, कहीं भीषण गर्मी है, तो कहीं कड़ाके की सर्दी है, इन प्राकृतिक आपदाओं के दंस से हमें केवल यज्ञ ही बचा सकता है यज्ञ सुखी जीवन की पैथी है तभी तो शतपथ ब्राह्मण का ऋषि पुकार-पुकार कर कह रहा है (स्वर्ग कामो यजेत) अर्थात् सुख चाहने वालों यज्ञ करों (ईजाना स्वर्ग यन्ति लोकम्) यज्ञ करने वाले सब सुखों को प्राप्त करते है (होत् सदनं हरितं हिरण्ययम्) यज्ञ करने वालों के घर सुख सौभाग्य और धन धान्य से परिपूर्ण होते है इस शुभ अवसर पर सभी आर्य सभासदों ने श्री आत्म प्रकाश जी को फूलों के हार पहनाकर उनके दीर्घ जीवन की ईश्वर से कामना की। श्री सुरेन्द्र टन्डन, श्री सुरेश चड्ढा, श्री कुलदीप राय, श्री सुभाष अबरोल, श्रीमति रीटा अबरोल, वेद प्रिय चावला, श्री अरूण सूद, श्री रमाकान्त महाजन, श्री राजेन्द्र बत्रा, श्री अनिल आर्य, चरणजीत पाहवा आदि ने माल्यार्पण कर श्री आत्म प्रकाश जी के दीर्घ जीवन की कामना की।

शान्ति पाठ के पश्चात् जलपान की व्यवस्था आत्म प्रकाश जी के परिवार की ओर से की गई। **-मन्त्री महिन्द्र पाल विग**

सक्रान्ति पर्व धूमधाम से मनाया

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में संक्रान्ति पर्व पर साप्ताहिक यज्ञ का आयोजन धूमधाम से किया गया जिसके मुख्य यजमान अविनाश कपूर एवं निशा कपूर परिवार सहित यज्ञ में पधारे और श्रद्धा से आहुतियां प्रदान कीं। रणजीत आर्य ने यज्ञ सम्पन्न करवाया। इस अवसर पर अपने सम्बोधन में उन्होंने अथर्ववेद के मंत्र की व्याख्या करते हुये कहा कि पाप से वास्तव में डरने वाले मनुष्य संसार में विरले ही होते हैं। आम तौर पर लोग पाप करने से नहीं डरते किन्तु पापी समझे जाने से डरते हैं। जहां कोई देखने वाला न हो वहां अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाना कोई पाप कर लेना साधारण बात है। पाप व अपराध कर्म करने से बचने की कोई कोशिश नहीं करता। कोशिश तो इस बात की होती है कि हम वैसा करते हुये कहीं पकड़े न जाएं। यही कारण है कि मनुष्य अपने बहुत से कार्य छिप कर अकेले में करने को प्रवृत्त होता है जहां हम दूसरों को धोखा देते हैं, ठग लेते हैं और समझते हैं कि इसका किसी को पता नहीं चलता। तब हम खुद कितने भारी धोखे में होते हैं। क्योंकि उस वरूण देव परमात्मा को सब कुछ पता ही होता है और हमें उसका फल भोगना पड़ता है।

इससे पूर्व सोनू भारती ने यज्ञ प्रार्थना व ईश्वर भक्ति के भजन सुनाएं और विशेष रूप से पधारे आर्य जगत के भजनोपदेशक स. सुरिन्द्र सिंह गुलशन ने अपने मधुर भजनों से सब का मन मोह लिया। इस अवसर पर मुख्य रूप से श्री रमेश मुटरेजा, जगदीश शर्मा, सुभाष आर्य, सुदर्शन आर्य, सतेन्द्र तलवाड़, किशन पाल, संगीता मल्होत्रा, अनु आर्य, इन्दु आर्य, सान्या आर्य, दिव्या आर्य, चौधरी हरीचंद, राजीव शर्मा, पूनम मेहता, ओम प्रकाश मेहता, केदारनाथ शर्मा, मीनू शर्मा, आंचल मदान, चन्द्र प्रकाश, शादी लाल, स. हरविन्द्र सिंह बेदी, रविन्द्र आर्य, पवन शुक्ला, प्रेम नाथ मितु, तिलक राज, स्नेह लता, इन्दु शर्मा, शिखा शर्मा, नेहा आर्य, किरण शर्मा, सुरेश ठाकुर, इन्द्र प्रकाश अरोडा, अनीता मितु, पन्ना लाल, हर्षलखनपाल, मनु आर्य, मोहन लाल, चन्द्र मोहन, दिनेश आर्य, राजेश शर्मा पधारे।

युग नायक महर्षि दयानन्द सरस्वती

-पं० नन्दलाल निर्भय भजनोपदेशक, पलवल

सकल विश्व के सब नर-नारी वैदिक धर्म निभाओ तुम
युग नायक ऋषि दयानन्द की मिलकर महिमा गाओ युग।।
वैदिक पथ को भूल गई थी, बिल्कुल यह दुनियां सारी।
अविद्या रूपी अंधकार में, भटक रहे थे नर-नारी।।
पाखंडी हुंकार रहे थे, गुरूडम पनपा था भारी।।
जन्म जाति की, ऊंच नीच की, फैल गई भी बीमारी।।
पढ़ो सभी इतिहास पुराना, व्यर्थ न समय गंवाओं तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की मिलकर महिमा गाओ तुम।।
वेद विरोधी अंग्रेजों का, भारत में था राज सुनो।
धूर्त नास्तिक, गौ हत्यारों के सिर पर था ताज सुनो।।
डाकू गुण्डे मालिक थे, चिंतित था सकल समाज सुनो।
ईश भक्त विद्वानों की थी, दबी हुई आवाज सुनो।।
लाखों विधावाएं रोती थीं, समझो और समझाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की मिलकर महिमा गाओ तुम।।
शिवरात्रि को बोध हुआ था, ऋषि ने घर को छोड़ा था।
जगत पिता उस जगदीश्वर से, सच्चा नाता जोड़ा था।।
ऐसा त्यागी सन्त जगत में, अब तक कोई ना आया।
परोपकारी दयानंद सत्तरह बार जहर खाया।।
ऋषिवर से सब बनो तपस्वी, जीवन सफल बनाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम।।
उग्रवाद, आतंकवाद का, दुनियां में है जोर सुनों।
मांसाहारी, चोर, शराबी, मचा रहे हैं शोर सुनों।।
सत्य, अंहिसा, सदाचार को, छोड़ चुके हैं नर-नारी।
लाखों गउएं आर्यवर्त्त में, प्रतिदिन जाती हैं मारी।।
''नन्दलाल निर्भय'' जागो ! दुष्टों के शीश उड़ाओ तुम।
युग नायक ऋषि दयानंद की, मिलकर महिमा गाओ तुम

आर्य समाज कोटा ने श्री पूनम सूरी का किया सम्मान

आर्य समाज का प्रचार प्रसार कर आमजन को यज्ञ के महत्त्व की जानकारी तथा उन्हें यज्ञ कार्यक्रमों से जोड़ें। उक्त विचार डीएवी कॉलेज प्रबन्ध कार्यसमिति के चैयरमेन श्री पूनम सूरी ने डीएवी स्कूल में आर्य समाज कोटा जिला सभा के प्रतिनिधि मण्डल से शिष्टाचार भेंट में कहे। उन्होंने कहा कि डीएवी विद्यालयों में आर्य संस्कारों को बढ़ावा देने के लिए डीएवी स्कूलों के सभी प्राचार्यों एवं अध्यापकों को यज्ञ करने का प्रशिक्षण दिया गया है। राष्ट्रोत्थान में आर्य विचारधारा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी।

इस अवसर पर आर्य समाज जिला सभा के प्रतिनिधिमंडल जिसमें जिला प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा, जिलामंत्री कैलाश बाहेती, कोषाध्यक्ष जेएस दुबे, पूर्व उपप्रधान रामप्रसाद याज्ञिक, डॉ. वेदप्रकाश गुप्ता ने डीएवी स्कूल में आर्य शिरोमणि पूनम सूरी को राजस्थानी साफा पहनाकर मोतियों की माला व गायत्री मंत्र से सुसज्जित रेशमी पटका पहनाकर स्वस्ति मंत्रोच्चारण के साथ सम्मान किया। श्री पूनम सूरी को जिला सभा की ओर से ओ३म् का स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्रीमती मणि सूरी, आर्य समाज के प्रतिनिधि व डीएवी के रीजनल डायरेक्टर एमएल गोयल, मैनेजर राजेश कुमार, प्रिंसीपल एके लाल, प्रिंसीपल श्रीमती सरिता रंजन गौतम कोटा, अशोक कुमार शर्मा जयपुर, अन्जू उतरेजा गढ़ेपान आदि भी उपस्थित थे।

आर्य समाज के प्रधान अर्जुनदेव चड्ढा ने श्री पूनम सूरी को कोटा आर्य जिला सभा द्वारा किये जा रहे धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक कार्यों की जानकारी दी। चड्ढा ने उन्हें बताया कि आर्य समाज के माध्यम से वेदप्रचार, नशामुक्ति, पर्यावरण सुधार, विभिन्न विद्यालयों में जाकर छात्रों को वैदिक संस्कार निराश्रित सेवा, कुष्ठरोगी सेवा आदि अनेक जनकल्याण के कार्य किया जा रहे हैं।

इस पर पूनम सूरी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए निर्धन, असहायों की और अधिक गति से सेवा कार्य करने की प्रेरणा दी।

-प्रधान आर्य समाज कोटा

वेदवाणी

कुशल सारथि की महिमा

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः।।

विनय-रथ के पीछे बैठा हुआ भी सारथि आगे-आगे चलने वाले घोड़ों को ऐसा काबू रखता है, अपने वश में रखता है कि उन्हें जिधर चाहता है उधर ही ले जाता है। यह कुशल सारथि की महिमा है, पर पीछे बैठा सारथि आगे लगे हुए घोड़ों से जिस साधन से अपना सम्बन्ध जोड़े रखता है, जिस साधन द्वारा दूर से ही उन्हें काबू में रखता है, असल में उस साधन की अर्थात् अभीशुओं (बागड़ोर) की स्तुति करनी चाहिए। ये रश्मियां ही हैं जो घोड़ों को सारथि की इच्छा अनुकूल संयत रखती हैं, घोड़ों को लगाम लगाए रखती हैं। क्या तुमने इन अभीशुओं(लगामों) के महत्त्व को समझा? पर ये तो बाहरी अभीशु या रश्मियां हैं। असली रश्मियां तो वे हैं जो कि मन नामक आन्तर ज्योति की वृत्तिरूप किरणें हैं। अन्तरात्मारूपी सूर्य की किरणें ही वास्तविक अभीशु या रश्मियां हैं जिनके द्वारा वह अन्दर का देव बाहर के साथ सम्बन्ध जोड़े हुए है और अपने सब बाह्य जगत् को वश में रख रहा है। वेद ने तो कहा है कि यह मनोदेव ही है जो कि कुशल सारथि की भांति सब मनुष्यों को घोड़ों के समान इधर-उधर लिए फिरता है। वास्तव में यह पीछे बैठा हुआ अन्तरात्मा अपनी रश्मियों द्वारा ही अपनी वृत्तियों व संकल्पों द्वारा ही आगे बैठे हुए और स्वतन्त्र दीखने वाले सब बाह्य जगत् को चला रहा है। हे मनुष्यों! इन मनोवृत्तियों को, मन संकल्पों की महिमा को अनुभव करो। इन रश्मियों को, इन बागड़ोरों को दृढ़ता से अपने हाथों में पकड़कर कुशल सारथि की भांति अपने आप को चलाओ, अपने आप पर शासन करो, अपने शरीर को, अपने हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को जुड़े हुए घोड़ों की भांति अपनी इच्छानुसार जहां चाहो वहाँ ले जाओ और जहां न चाहो वहां न ले जाओ। वास्तव में इन रश्मियों को हाथ में रखकर तुम जो चाहो वह कर सकते हो। बस केवल इन मनोवृत्तियों, मनःसंकल्पों को दृढ़ता से पकड़ लेने की देर है। फिर तुम अपने आपको जहां जैसा चलाना चाहोगे वैसे ही तुम्हारी इन्द्रिय आदि सबको चलना होगा। तुम आशावादी हो जाओगे, तब तुम देखोगे कि तुम जहां अपने आपको जैसा चाहते हो वैसा हिलाते हो, वहां अपने सब बाह्य संसार को भी जैसा चाहते हो वैसा हिला रहे हो। यह सब अभीशुओं की, रश्मियों की महिमा है।

-साभार वैदिक विनय प्रस्तुति-रणजीत आर्य

वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन

महर्षि दयानन्द मठ (वेद मन्दिर) ढन्न मोहल्ला जालन्धर में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन 14 जुलाई से 20 जुलाई तक किया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत् के उच्चकोटि के प्रखर ओजस्वी विद्वान आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय जी (दिल्ली) के विद्वतापूर्ण प्रवचन तथा श्री राजेश प्रेमी जी जालन्धर के मधुर भजन होंगे। सभी आर्य महानुभावों से प्रार्थना है कि वे अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों सहित पधार कर धर्म लाभ प्राप्त करें।

-कुन्दन लाल अग्रवाल प्रधान महर्षि दयानन्द मठ

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताजगी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।